महत्वपूर्ण एवं खास

खतरे में साख

10वीं और 12वीं कक्षा के प्रश्नपत्र लीक होने से सीबीएसई की साख को गहरा धक्का लगा है। 12वीं की अर्थशास्त्र की परीक्षा 26 मार्च को हुई थी, जबकि 10वीं कक्षा की गणित की परीक्षा 28 मार्च को। परीक्षा से पहले ही हाथ से लिखे सवाल वॉट्सऐप पर शेयर हो रहे थे। पेपर में भी वही सवाल आए। लेकिन सीबीएसई दावा करता रहा कि पेपर लीक नहीं हुए हैं। इससे पहले 15 मार्च को 12वीं के अकाउंट्स का पेपर लीक होने की खबर थी। सीबीएसई ने उससे इनकार कर दिया था। अब बीते बुधवार को सीबीएसई ने पेपर लीक की बात स्वीकार करते हुए 12वीं के अर्थशास्त्र और 10वीं के गणित की परीक्षा दोबारा कराने का फैसला किया है। लेकिन अब कई छात्रों ने पूरी परीक्षा फिर से कराए जाने की मांग को लेकर प्रदर्शन शुरू कर दिया है।

देशभर के छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों में इसे लेकर भारी गुस्सा है। दिल्ली पुलिस की क्राइम ब्रांच ने मामले की जांच एसआईटी को सौंप दी है। इस सिलसिले में एक कोचिंग संचालक को गिरफ्तार भी किया गया है। सवाल है कि कोई भी पेपर बोर्ड के अंदर के किसी व्यक्ति की मिलीभगत के बगैर बाहर कैसे आ सकता है? अगर ऐसा नहीं है तो किसी स्तर पर जरूर लापरवाही हुई है। गौरतलब है कि पेपर सेट करने के लिए विशेषज्ञों की मदद ली जाती है। ये विशेषज्ञ एक-दूसरे से अनजान होते हैं। पेपर सेट होने के बाद उन्हें मॉडेरेटर के पास भेजा जाता है जो सिलेबस और कठिनाई की जांच करते हैं। फिर पेपर को ट्रांसलेशन के लिए भेजा जाता है और इसके बाद उन्हें छपने भेजा जाता है। छपे हुए पेपर एक जगह स्टोर करके रखे जाते हैं फिर उन्हें कलेक्शन सेंटर पर भेजा जाता है। इस प्रक्रिया में कहीं भी थोड़ी ढिलाई से लीक संभव है।

क्या इस बात की जांच की जाएगी कि कहां गड़बड़ी हुई? क्या दोषियों के खिलाफ कार्रवाई होगी? ऐसे समय जब राज्यों के बोर्ड अनियमितता के कारण कठघरे में खड़े किए जा रहे थे, सीबीएसई ने अपनी पारदर्शिता और पेशेवराना रवैये से अपनी प्रतिष्ठा कायम की थी। पिछले कुछ वर्षों में यह अच्छी शिक्षा और अच्छे करियर के पर्याय के रूप में उभरकर आया, लेकिन पेपर लीक ने इसकी विश्वसनीयता पर गहरी चोट पहुंचाई है। कहीं ऐसा तो नहीं कि तकनीक के बढ़ते प्रसार और उनकी व्यापक उपलब्धता ने हमारी मौजूदा व्यवस्थाओं को बेजान बना दिया है? जाहिर है अब हमें पहले से कहीं बेहतर और अत्याधुनिक तंत्र की जरूरत है। क्या सरकार इस प्रकरण को गंभीरता से लेते हुए एक सक्षम तंत्र बनाएगी? फिर इस पर भी विचार करना चाहिए कि कहीं हमारी शिक्षा प्रणाली अंकों का एक खेल बनकर तो नहीं रह गई है? शिक्षा के स्वरूप में व्यापक बदलाव की पहलकदमी भी सीबीएसई को करनी चाहिए।

जवाब मांगते माफी के बाकी सवाल

क्षमा करना आसान कार्य नहीं होता, पर क्षमा मांगना उससे भी मुश्किल होता है। लगता है, दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और अकाली दल, कांग्रेस और भाजपा के तीन नेताओं ने यह मुश्किल पार कर ली है। अरविंद केजरीवाल ने मान लिया है कि इन तीन नेताओं पर उनके द्वारा लगाए गए भ्रष्टाचार के आरोपों का कोई प्रमाण उनके पास नहीं है। विक्रम सिंह मजीठिया, नितिन गडकरी और कपिल सिब्बल ने भी केजरीवाल को उनके 'अपराध' के लिए क्षमा कर दिया है। दोनों पक्षों ने अदालत में स्वीकार कर लिया है कि अब उन्हें एक-दूसरे से कोई शिकायत नहीं है। हालांकि अभी और कई नेता हैं, जिन्हें केजरीवाल से शिकायत है, पर लगता है दिल्ली के मुख्यमंत्री अदालती कार्यवाही से थक गए हैं, इसलिए उनसे भी क्षमा मांग लेंगे और संबंधित नेता भी उन्हें क्षमा कर देंगे। यानी, मामला साफ हो गया है। भ्रष्टाचार का आरोप लगाने वाला भी अब चैन से राज कर सकेगा और भ्रष्टाचार के आरोपी भी अपनी राजनीति आराम से चलाते रहेंगे।

राजनीति में एक-दूसरे पर बेबुनियाद आरोप लगाना कोई नई बात नहीं है। अपनी-अपनी

राजनीति चमकाने के लिए अक्सर नेता लोग एक-दूसरे पर आरोप- प्रत्यारोप लगाते रहते हैं। हो सकता है, कुछ आरोप सही भी हों, पर अक्सर उन आरोपों को प्रमाणित करना मुश्किल होता है। अक्सर दोनों पक्ष इस तरह के आरोपों पर कुछ अरसा अपने स्वार्थों की रोटियां सेंकने के बाद चुप्पी साध लेते हैं। फिर नए आरोप लगाते हैं। फिर नयी राजनीति होती है। एक बात और भी है। हमारे राजनेताओं ने राजनीति को ऐसी काजल की कोठरी बना दिया है कि अपना दामन साफ बचाए रखना असंभव की हद तक मुश्किल हो गया है। प्रतियोगिता दामन के उजलेपन की नहीं होती, कम या ज्यादा दागों की होती है। इसलिए अक्सर नेतागण एक-दूसरे के आरोपों को भुला देना ही बेहतर समझते हैं। और जनता की याददाश्त तो कमजोर मानी ही गई है। नेतागण मान लेते हैं कि जनता भूल जाएगी और जनता भी याद रखने के बोझ को कंधे से उतार देने में ही अपनी बेहतरी समझने लगती है। ऐसा बहुत कम होता है कि नेता लोग मानहानि की चिंता करें। इस बार कुछ नेताओं ने यह चिंता की तो अच्छा लगा था। लगा था कि शायद बात आगे तक जाए, शायद अदालत बेबुनियाद आरोप लगाने वालों पर कुछ रोक लगा सके। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। आरोप लगाने वाले ने माफी मांग ली और आरोपी ने माफ कर दिया! लेकिन सवाल उठता है कि क्या माफी मांगना और माफ करना एक सहज प्रक्रिया थी? क्या सचमुच केजरीवाल को इस बात का खेद है कि उन्होंने बिना प्रमाणों की परवाह किए कुछ भले लोगों पर आरोपों की कालिख पोत दी? और क्या माफ कर देने वालों ने मान लिया है कि केजरीवाल से गलती हो गई होगी, अब वह ऐसी गलती नहीं करेंगे? दुर्भाग्य से, इन सारे सवालों का उत्तर नकारात्मक ही लगता है। माफी मांगने और माफ करने की इस प्रक्रिया में न कहीं प्रायश्चित का भाव दिखता है और न ही उदारता का।

शिष्टाचार का तकाजा

बात उन दिनों की है जब पंडित जवाहरलाल नेहरू लखनऊ की सेंट्रल जेल में थे। जेल में खाना तैयार होते ही मेज पर रख दिया जाता था। सभी सम्मिलित रूप से खाते थे। एक बार एक डायनिंग टेबल पर एक साथ सात आदमी खाने बैठे। तीन आदमी नेहरूजी की तरफ और चार आदमी दूसरी तरफ। एक पंक्ति में नेहरूजी थे और दूसरी में चंद्रसिंह गढ़वाली। खाना खाते समय शक्कर की जरूरत पड़ी। बर्तन कुछ दूर था। चंद्रसिंह ने सोचा-

आलस्य करना ठीक नहीं है, अपना ही हाथ जरा आगे बढ़ा दिया जाए। चंद्रसिंह ने हाथ बढ़ाकर बर्तन उठाना चाहा कि नेहरूजी ने अपने हाथ से रोक दिया और समझाने लगे-हर काम के साथ शिष्टाचार आवश्यक है। भोजन की मेज का भी अपना एक सभ्य तरीका है, एक शिष्टाचार है। यदि कोई चीज सामने से दूर हो तो पास वाले को कहना चाहिए- कृपया इसे देने का कष्ट करें।

सफलता का मतलब

आज समाज में सफल कौन है? पहला जवाब होगा- वह जिसके पास ढेर सारा पैसा हो। पर ठहरिए, यह सोच बदल रही है। अब देश के ज्यादातर प्रफेशनल्स सफलता का पर्याय संपन्नता को नहीं मानते। उनकी राय में सफल वही है जिसके पास खुशी है, सुकून है। प्रफेशनल नेटवर्किंग साइट 'लिंक्ड-इन' के एक सर्वे के अनुसार करीब 72 प्रतिशत भारतीयों ने माना कि सफलता का अर्थ है खुशी हासिल करना। 65 फीसदी के लिए बेहतर स्वास्थ्य और 57 प्रतिशत के लिए पेशेवर जिम्मेदारी और निजी जीवन के बीच अच्छा संतुलन ही सफलता है। सर्वे में करीब 79 फीसदी भारतीयों ने माना कि शिक्षा का सफलता में महत्वपूर्ण योगदान है।

लिंक्ड-इन ने यह सर्वे पिछले वर्ष 12 अक्टूबर से 3 नवंबर के बीच ऑनलाइन कराया था। इसमें सोलह देशों के 18,191 लोगों ने हिस्सा लिया था। सर्वे से एक बात तो साफ है कि भारतीय प्रफेशनल्स अब पैसे के पीछे नहीं भाग रहे। उनकी प्राथमिकताएं बदल गई हैं। वे संतुलन को महत्व देने लगे हैं। उन्हें पैसे चाहिए, लेकिन उसके साथ-साथ एक सुखद जीवन भी चाहिए। यह एक बड़े सामाजिक बदलाव का भी संकेत है।

दरअसल भूमंडलीकरण और उदारीकरण की शुरुआत के साथ ही नौकरी के स्वरूप में भारी बदलाव आया। विदेशी और भारतीय कंपनियों ने योग्य पेशेवरों को इतना वेतन देना शुरू किया जो अब तक कल्पना से परे था। कंपनियों में आपसी प्रतियोगिता के कारण अनुभवी प्रफेशनल्स को आगे बढ़ने के खूब अवसर मिले और उन्होंने उनका भरपूर लाभ उठाया। एक ऐसा माहौल बना कि अधिक से अधिक मेहनत करके बेहिसाब दौलत कमाई जा सकती है। प्रफेशनल्स के बीच अधिक से अधिक सैलरी कमाने की होड़ लग गई। लेकिन पैसे कमाने की गरज में वे बाकी चीजें भूल गए। अब पहले की तरह कामकाज के घंटे सीमित नहीं थे। अब कंपनी द्वारा दिए गए टारगेट पूरा करने के लिए सोलह से अठारह घंटे तक काम करने का चलन शुरू हो गया। बहरहाल इससे पैसे की बरसात तो हुई, लेकिन प्रफेशनल्स ने अपना जीवन दांव पर लगा दिया। उनका स्वास्थ्य खराब हो गया, पारिवारिक जीवन चौपट हो गया। उन्होंने जो पैसे हासिल किए, उसका ढंग से उपभोग नहीं कर पाए। इस पीढ़ी के हश्र को इनके बाद आए प्रफेशनल्स ने देखा है और उससे सबक लिया है। यह पीढ़ी जीवन का आनंद उठाना चाहती है।

सामाजिक सरोकारों की प्रेरक पहल

किसी स्त्री के जीवन में दुखों का पहाड़ टूटे और वह दुखों को अपनी ताकत में बदलकर सेवा का संकल्प ले, ऐसे विरले उदाहरण ही मिलते हैं। छोटी उम्र में पति की मौत से आहत केरल के एर्नाकुलम जिले की पी.जी सुधा ने स्वाभिमान से जीने की ऐसी राह तलाशी, जिसकी आमतौर पर उम्मीद नहीं की जा सकती। परिवार व रिश्तेदारों पर बोझ बनने के बजाय उसने एक ऐसा पेशा चुना जो आमतौर पर महिलाओं के लिये वर्जित क्षेत्र जैसा रहा है। उसकी मजबूरी यह भी थी कि वह कम पढ़ी-लिखी थी। उसने वन रक्षक की जिम्मेदारी संभाली। उस जंगल में जहां जंगल का कानून ही चलता है। जंगली जानवरों के खौफ से बड़ा हरदम रहने वाला तस्करों का खतरा। रिश्तेदारों और सहकर्मियों को यह रास नहीं आया कि बियाबान जंगल में कोई महिला वन संपदा की चौकीदारी करे। मगर आज उसकी झोली में सर्वश्रेष्ठ वनाधिकारी का पुरस्कार है। फिलहाल सुधा की चर्चा एक अलग वजह से है।

जिसका उसके विभाग से ताल्लुक नहीं है। मगर उसने वो कर दिखाया कि आज उसे केरल में स्वच्छता मिशन का ब्रांड एंबेसडर माना जा रहा है। मुख्यमंत्री उसे सम्मानित कर चुके हैं। केरल आज खुले में शौच के अभिशाप से मुक्त हुआ है तो उसमें पी.जी.सुधा की बड़ी भूमिका है।

दरअसल, सुधा के अथक प्रयासों से महज तीन महीनों में आदिवासी इलाकों में पांच सौ शौचालय बनाये गये। उन इलाकों में जहां शौचालय बनाने के लिये ठेकेदार ठेका लेने से कतराते थे। वजह यह है कि इन दूरदराज के इलाकों में कोई पक्की सड़क तक नहीं थी और कोई वाहन नहीं जा सकता था। ऐसे में शौचालयों के लिये निर्माण सामग्री ले जायी जाये तो कैसे।

वास्तव में एक वन बीट अधिकारी के रूप में सुधा ने इतनी ईमानदारी व मेहनत से काम किया कि क्षेत्र के तमाम आदिवासी उन्हें अपना मार्गदर्शक मानने लगे। वे गाहे-बगाहे उससे मदद मांगते और सुधा उनकी पूरी मदद करती। जो काम उससे नहीं होता, वह अपने अधिकारियों की मदद से कराती। जब केरल में खुले में शौच से मुक्ति अभियान चला तो अधिकारियों के हाथ-पांव फूल गये कि इन आदिवासी इलाकों में कैसे योजना को सिरे चढ़ाया जाये। कई तरह की दिक्कतें सामने थीं। एक तो आदिवासी स्वच्छंद जीवन जीते और खुले में शौच सदियों से उनके जीवन का सहज हिस्सा रहा है। एक तो उन्हें इसके लिये तैयार करना और दूसरे सड़क मार्ग से कटे इलाकों में सीमेंट, ईंट और टायलेट शीट को पहुंचाना।

एर्नाकुलम जनपद के जिलाधिकारी के दिमाग में विचार आया कि जंगल में बसे आदिवासियों तक पहुंचने के लिये पी.जी. सुधा की मदद ली जाये तो योजना सिरे चढ़ सकती है। यूं तो ये सुधा के विभाग का मसला नहीं था, न उसकी जवाबदेही थी, मगर वह इस कठिन काम के लिये राजी हो गई। उसने सिर्फ तीन माह में लक्ष्य को अंजाम तक पहुंचाया।

यह राह आसान नहीं थी।

एकजुटता की ओर

तृणमूल कांग्रेस प्रमुख ममता बनर्जी की अगुआई में विपक्षी एकता की कोशिशें जिस तरह से रंग पकड़ रही हैं, वह बीजेपी के लिए चिंता की बात हो सकती है। तेलंगाना के मुख्यमंत्री और टीआरएस अध्यक्ष के चंद्रशेखर राव के गैर कांग्रेस, गैर बीजेपी दलों की एकजुटता के आह्वान से अलग ममता ने दिल्ली में न केवल सोनिया गांधी से मुलाकात की बल्कि साफ तौर पर कहा कि वह विपक्षी एकता के इस अभियान में कांग्रेस को साथ लेकर बढ़ना चाहती हैं। इससे पहले कांग्रेस भी बीजेपी के खिलाफ सभी दलों के साथ आने की जरूरत बता चुकी है।

इससे भी बड़ी बात यह कि पहली बार विपक्षी एकजुटता के अभियान में लगे नेताओं ने बीजेपी के अंदर के असंतुष्ट तत्वों का समर्थन पाने की कवायद की। ममता बनर्जी से मिलने वालों में पूर्व केंद्रीय मंत्री यशवंत सिन्हा, शत्रुघ्न सिन्हा और अरुण शौरी भी रहे। यशवंत और शत्रुघ्न ने तो खुलकर स्वीकार भी किया कि वे पार्टी से ज्यादा महत्वपूर्ण देश को मानते हैं और इसीलिए देश बचाने की खातिर ममता बनर्जी के अभियान का पूरा समर्थन करते हैं। तेलुगू देशम जैसे घटक दल के एनडीए छोड़ने और शिवसेना जैसे पुराने सहयोगी दल के साथ छोड़ने की घोषणाओं के बाद पार्टी के अंदर के असंतुष्ट तत्वों को अपनी ओर करने की विपक्ष की ये कोशिशें बीजेपी पर नया हमला हैं। यह समझना सही नहीं होगा कि विपक्षी घुसपैठ इन पुराने एण्ड आईएसक्यूयूओ; चुके हुए नेताओं एण्डआरएसक्यूयूओ; तक सीमित रहेगी। एससी/एसटी ऐक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले से दलित सांसदों के भीतर मची खलबली आगे क्या रूप लेगी कहना मुश्किल है, लेकिन बीजेपी की एक सांसद सावित्री बाई फुले ने जिस तरह पार्टी के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है, वह बेहद अहम है। हालांकि इन सबका मतलब यह नहीं कि विपक्षी एकता की राह की सारी मुश्किलें दूर हो गई हैं। अभी तक यह सवाल नहीं उठा है कि विपक्षी मोर्चे का नेतृत्व किसके हाथों में रहेगा और राहुल को नेता मानने को कितने लोग राजी होंगे। पर ऐसे सवाल कह-सुनकर नहीं, आखिरकार राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन से ही तय होते हैं।

साफ है कि कर्नाटक और फिर राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ के आगामी विधानसभा चुनाव कांग्रेस और राहुल दोनों के लिए इस लिहाज से भी अहम होंगे।

उतनी कमाई, जितनी जेब दे गवाही

जिन तमाम बातों की फिक्र मैं नहीं करता, उनमें से एक 31 मार्च भी है। 31 मार्च को भी मैं वैसे ही बरतता हूं जैसे अन्य तारीखों को। मार्च एंड है तो क्या! कोई हव्वा थोड़े है। मैं तो बस इतना जानता हूं कि मार्च एंड में मुझे अपना कुछ भी क्लोज नहीं करना है। जो जैसा चल रहा है, चलते रहने देना है।

31 मार्च की फिक्र तो वे करें जिनके लंबे-चौड़े बैंक बैलेंस हैं। या फिर वे जिन्हें काले को सफेद में बदलकर खुद को सरकार और इनकम-टैक्स की निगाह में पवित्र दिखाना है। लेकिन अपने साथ ऐसा कोई रगड़ा नहीं। महीने का एंड तो छोड़िए, यहां तो जेब का हाजमा दस तारीख तक आते-आते ही गड़बड़ाने लगता है। खर्च और महीना कैसे निपट पाता है, मुझसे बेहतर भला कौन जानता होगा। फिर भी, कोई गम और फिक्र नहीं।

लेखक होने का चाहे कोई फायदा मिला हो या नहीं लेकिन इतना फायदा तो मिला ही है कि पूंजी के भंडार नहीं भरे हैं। ज्यादा पूंजी जोड़कर करना भी क्या

है! पूंजी को तो यों भी आवारा कहा-माना गया है। वैसे, आवारगी एक धांसू विधा है पर पूंजीगत आवारगी में अपना रत्तीभर विश्वास नहीं। पैसा हाथ का मैल है। इस मैल का यश पूंजीपतियों को ही मुबारक। मार्च के महीने में मैंने बहुतों को हड़बड़ाते देखा है। एक अजीब किस्म का डर उनके चेहरों पर पढ़ा है। अपने सीए की बटरिंग करते सुना है। टैक्स के झंझटों में इतना उलझे रहते हैं कि अपनी सेहत के समीकरण तक बिगाड़ देते हैं। माना कि मार्च सबसे खर्चीला और टिपिकल महीना है पर हव्वा थोड़े है।

इतना कमाते ही क्यों हो कि हर तरफ की जमा-पूंजी का हिसाब-किताब रखना पड़े। रात को तिजोरी पर ताला लगाकर सोना पड़े। बैंक से नोट निकालने पर्सनल गनर के साथ जाना पड़े। किताबों में हेराफेरी करनी पड़े। अफसरों की जेबें गर्म करनी पड़ें। दिल पर हर वक्त यह बोझ लदा रहे कि हाय! इतना पैसा कैसे संभाल पाऊंगा?

अमां, कमाई उतनी ही क्यों नहीं करते जितनी जेब गवाही दे। जेब की औकात से बाहर कमाओगे टेंशन तो रहेगी ही महाराज। लेकिन हम कहां मानते हैं। लोग तो लाश का भी सौदा कर जाते हैं यहां।

सुख से हूं कि लेखक हूं। न ऊंची-मोटी कमाई है। न घर में तिजोरी की जगह है, न जेब पर अतिरिक्त बोझ। जितना कमा पा रहा हूं, जीवन की गाड़ी टनाटन चल रही है। फकीरी का भी अपना ही आनंद है श्रीमानजी।

सबको मालूम है, साथ कुछ लेकर नहीं जाना। सब जोड़ा-जाड़ा यहीं छोड़ जाना है। फिर भी, आदमी टेंशनग्रस्त है। 31 मार्च की फिक्र में यों दुबला हुआ जा रहा है मानो सब कुछ क्लियर कर वो कोई बहुत बड़ा तीर मार लेगा!

खाना-खजाना

मैंगो एंड कोकोनट सॉर्बे- गर्मियों में ये रेसिपी करेगी आपको कूल

कितने लोगों के लिए : 2

सामग्री :

500 ग्राम फ्रोज़न मैंगो, 270 मिलीलीटर कोकोनट क्रीम, 1 टेबलस्पून नींबू का रस, 2 टेबलस्पून चीनी, गार्निश के लिए नींबू का छिलका

विधि :

ब्लेंडर में मैंगो, कोकोनट क्रीम, नींबू का रस और चीनी डालकर ब्लेंड करें।

मेटल ट्रे में मिश्रण को निकालकर प्लास्टिक रैप से कवर कर लें।

इसे तीन घंटे के लिए फ्रिज में रखें। अब दोबारा चलाकर रात भर के लिए फ्रिज में रख दें।

ग्लास में निकालकर नींबू के छिलकों को कसकर गार्निश कर सर्व करें।